गद्य गुदगुदी

पहला भाग

हिंदुस्तानी हिंदी सभा हैदराबाद दक्षिण
1952

प्रकाशक—

हिंदुस्तानी हिंदी सभा,

मुकर्रम जाही रोड, हैदराबाद, (दक्षिण).

एक रुपया आठ आना

मुद्रक—

वीर मिलाप प्रेस,

मुकर्रम जाही रोड, हैदराबाद, (दक्षिण)

संत वाणी

मंदिर मसजिद एक !

हिन्दू चिपटे हैं मन्दिर से,

मुसलमान अपनी मसजिद में;

न यहां हिन्दू का मंदिर है, न वहां मुसलमान की मसजिद.

वहां तो बस, नग्न आत्मा ही आत्मा है.

वहां न कोई राह है और न रीति.

मूर्ख, जिसे तूने बनाकर खड़ा किया है,

उस मंदिर की तो तू बड़े जतन से रखवाली करता है,

और जिस रतन जैसे प्रत्यक्ष प्राणी को,

स्वयं प्रभु ने रचा है,

मूर्ख, उसे तू नष्ट कर रहा है!

मनुष्य की बनाई मसजिद को,

तू झुक-झुककर सलाम करता है,

और जिसे, खुद खुदा ने खड़ा किया है,

उसको ऐ मोमिन तू ढा रहा है!

न मंदिर में, न मसजिद में !

मुसलमान अपने खुदा का ठौर मसजिद में बताते हैं,
हिन्दुओं के राम का वास मंदिर में सुनते हैं.
मसजिद के अंदर ही अगर अल्लाह है,
तो और जगह क्या खाली पड़ी है ?
और अगर नमाज़ पढ़ने के पांच ही वक्त हैं,
तो और सब वक्त क्या चोरों के हैं ?
धर्मशाला में तो रहने लगे है डाकू,
ठाकुर-द्वारे में ठगों का गिरोह,
और मसजिद में बदमाशों की टोली.
इसलिए अल्लाह के आशिक अलग ही रहते हैं.

—❀—

न पूजन ना नमाज़ !

मूर्तियां पूजते-पूजते हिंदू मर गये,

और मुसलमान मर गये नमाज पढ़ते-पढ़ते.

हिंदू अपने मुर्दें को जलाते हैं,

और मुसलमान दफ़नाते हैं,

पर तेरी थाह तो किसी में भी नहीं मिली.

तू क्या कह कह चला था, है कुछ याद ?

जगत में जन्म लेकर,

तूने वैसा वर्ताव तो नहीं किया.

तू अपना सारा कौल-करार भूल गया !

तेरे दिल में सच्चा रंग तो पैदा हुआ हो नहीं,

भगुवे कपड़े पहिनकर फ़कीर का भेस तूने बेकार बना लिया

बिना भजन के तेरी बुरी गति रही है.

यम के द्वार पर तुझे मुश्कें बांध कर लेजायंगे

कहीं कुछ नहीं !

गया जाने से बात खत्म नहीं होगी,
वहां जाकर तू चाहे कितना ही पिंड दान दे.
बात तो प्यारे, तभी खत्म होगी,
जब तू खड़े खड़े इस 'मैं' को मिटा देगा !
मक्का जाने से बात खत्म नहीं होती,
और गंगा नहाने से पाप नहीं छूटते,
चाहे तुम वहां सैकड़ों गोते लगाओ,
जब तक तुमने अपने दिल से 'आपा' नही त्यागा,
तब तक यह आवा-गमन की बात खत्म होने की नहीं.
जिनके हृदय-गृह में ईश्वर बसता है,
असत्य और कपट का जहां अंश भी नहीं,
उनका दर्शन ही तीर्थ स्थान है—
कहां तुम्हारा पर्व कहां गंगा स्नान ?

सभी समान !

उत्पत्ति सबकी एक ही वीर्य विन्दु से हुई है,
मल मूत्र भी सब का एक-सा ही है,
चमड़ा भी वही है, रक्त-मास और मज्जा भी वही,
और किरणें भी ये सब ब्रह्म-ज्योति की ही हैं,
तब बोलो, यहां कौन तो ब्राह्मण है और कौन शूद्र ?
अनेक भ्रमों से ग्रस्त वे नर नहीं, पशु हैं.
कौन इस ऊंच नीच के भेद-भाव को जकड़ रहा है ?
बताओ, तुम ब्राह्मण क्यों, हम शूद्र क्यों ?
हमारा रक्त लोहू है—यह सत्य है,
पर तुम्हारा रक्त क्या दूध है ?
तेरा जन्म हुआ, तब तू शूद्र ही था न ?
और श्मशान भी तुझे शूद्र ही कहेगा.

कर्म देख !

हां, जो सुकर्म करता है वह ऊंच है,

जो कुकर्म करता है वह नीच.

जगत में सर्वत्र एक ही ज्योति जग रही है.

एक ही पवन से,

एक ही पानी से और एक ही मिट्टी से,

एक ही कुम्हार ने इन विविध घड़ों को गढ़ा है।

हर घट में वही एक राम व्यापा है.

हर सूरत में उसीकी झलक नजर आती है.

राजा, रंक और चांडाल

सबके घर एक ही दीपक जल रहा है.

जाति न पूछ !

हमारा दाता देता है, तो जाति नहीं पूछता,
वह ब्राह्मण है, और यह क्षत्रिय है,
वह वैश्य है, और यह शूद्र,
ऐसा भेद-भाव हमारे दाता के द्वार पर थोड़ा ही है ?
हृदय में जिनके दया धर्म है,
जो अमृत जैसे बोल बोलते हैं,
और नम्रता जिनकी आंखों में बसती है,
वे ही असल में ऊंचे और ऊंचे वर्ण के हैं.
किन्तु तुम नीच कहते हो.
वे तो जगत को पार कर गये हैं,
संतों के चरणों की महिमा ही ऐसी है.
और डूबे वे, जो
कुलीनता के अभिमान में डूबे हैं।

—:०:—

(12)

दोनों एक !

हमारा राष्ट्र-शरीर ऐसा है—मानो,
एक हाथ हिंदू है, एक हाथ मुसलमान,
एक पाँव हिंदू है, दूसरा मुसलमान,
दोनों भाई दोनों कान।
दोनों भाई दोनों नेत्र।
हमारा राष्ट्र शरीर ऐसा है;
हमने अच्छी तरह शोधकर देख लिया,
हमें तो सर्वत्र एक ही आत्मा नज़र आयी,
जो आत्मा हिंदू में है, वही मुसलमान में है,
फिर यह अभेद में भेद क्यों देखते हो, बाबा ?
वही महादेव बाबा है, वही है हजरत मुहम्मद,
जो ब्रह्म है वही आदम है.

एक ही मिट्टी के

जब एक ही जमीन पै सबको रहना है,
तब किसे हिंदू कहें, किसे मुसलमान ?
कुरान पढ़ने वाले को भले ही तुम मुल्ला कहो,
जो पुराण पढ़ता है उसे भले ही पंडित का नाम दो,
जुदा जुदा नाम तुम भले ही इन सब के रख दो,
पर असल में, हैं तो सब एक ही मिट्टी के बरतन !
गहने तो सब एक ही सोने के हैं—
नथनी और पायज़ेब के सोने में क्या कोई भेद है ?
यह तो यूं ही दुनिया में कहने-सुनने को दो नाम दे रखे हैं;
असल में नमाज़ और पूजा
एक ही भव्य-भावना के जुदा-जुदा नाम हैं.

एक ही रक्त मांदन !

हिदू और मुसलमान के प्राण और पिंड में क्या भेद है ?

न आंखों में कोई अंतर है, न नाक में.

लोगों ने फ़ज़ूल झगड़ा कर रक्खा है.

कान सबके एक समान ही सुनते हैं.

भूख सब को एक-सी सताती है.

मीठा खट्टा सब की जीभ को एक-सा ही लगता है.

हर घट की रचना में एक ही जुगत दिखायी देती है—

वही संधि, वही बंधन !

हाथ--पैर जैसे हिदू के हैं, वैसे ही मुसलमान के हैं.

एक से शरीर हैं.

सब को एक सा सुख है, एक सा दुख.

न तू सुन्नत करा ! न तू जनेऊ पहन !

फिर देखे, कौन तुझे मुसलमान कहता है ?

और कौन कहता है तुझे ब्राह्मण ?

यह सारा तफ़रिका तो इस सुन्नत और जनेऊ ने कर रखा है.

(15)

काफ़िर कौन ?

काफिर कौन ?

जो अपने दिल में विवेक को जगह नहीं देता,

जो बड़े गर्व से अपनी छाया को देख-देख कर चलता है,

जो जुल्म करता है, गरीबों को सताता है,

जिसके दिल में दीन दुखियों के लिए दर्द नहीं,

सिरजनहार से जिसका प्रेम नहीं,

अपने नश्वर शरीर पर जो भारी गर्व करता है.

भला इन बातों से कभी स्वामी से भेंट हो सकता है ?

दूसरे के धन पर हमेशा जिसकी नियत रहती है,

ज़ोर-जुल्म कर जो औरों का धन खाता है,

वह काफ़िर निश्चय ही नरकलोक की यात्रा करेगा.

—:o:—

(16)

राहगीर

रास्ता चलते कोई गिर पड़े,
तो उसका कोई दोष नहीं.
यात्रा तो कठिन उसके लिए है–
जो चलता ही नहीं,
बैठा बैठा बातें बना रहा है.
"मिश्री-मिश्री" कहने से
किसी का मुंह कभी मीठा हुआ है ?
अरे, मुंह तो तभी मीठा होगा,
जब उसमें मिश्री की डली डालोगे.
चलने से हारकर केवल बातों से कोई घर पहुँचा है !
राहगीर तो वही चतुर कहा जायेगा,
जो चुप-चाप अपना रास्ता चलता रहा.

(17)

करनी, कथनी !

बिना करनी के कथनी ऐसी है,

जैसे बिना चन्द्रमा के रात, या—

साहस के बिना शूर वीर,

अथवा नारी के बिना गहना !

यह तो बांझ स्त्री का पालने में,

कल्पित बालक को झुलाना हुआ !

जहां करनी ही नहीं,

वहां काज कौन बनेगा !

—:०:—

निंदक मेरा भाई !

बाबा, निदक तो मेरा भाई है—
बेचारा बिना ही पैसे-कौड़ी के काम करता है,
करोडों कर्मों के पाप काट कर फेंक देता है,
और बिना ही मजूरी लिए मेरा काम संभालता है,
खुद डूब कर दूसरों को तारता है,
पार उतारने वाला मेरा वह ऐसा प्रिय बन्धु है ।
मैं तो बेचारे निंदक को परोपकारी ही कहूंगा;
मेरी निंदा कर वह मेरा उपकार करता है.
आंगन में कुटिया बनवा कर,
निदक को तो सदा अपने ही पास रखना चाहिए.
बिना ही पानी और बिना ही साबुन के
सहज में वह मन का मैल धो डालता है.
हे राम, निदक को कभी मौत न आये !
बेचारा कितना परोपकारी है !
अपने ऊपर खुद गंदगी ओढ़कर,
हमें साफ और निर्मल कर देता है.

(19)

निंदक जुग जुग जिये !

मेरा निंदक जुग जुग जिये !

राम तुमसे मेरी यही विनती है !

निंदक को तो मैं देखते ही प्रणाम करता हूं—

"महाराज ! तुम धन्य हो !

तुमने प्रभु के भक्तों का अहंकार मल साफ कर दिया है·

संसार में जन्म लेकर तुमने दूसरों का उद्धार किया,

भक्तों के अंतर का मैल तुमने मुफ्त ही धो दिया.

तुम्हारे प्रताप से मैं जगत में प्रसिद्ध हो गया—

सारे जगत में तुमने सुयश का बीज बो दिया·

मेरे निदक के मर जाने से,

मेरी बहुत हानि हुई,

और उस दिन बहुत रोया !

—:०:—

सचाई का रास्त !

सत्य के समान दूसरा तप नहीं,

असत्य के समान दूसरा पाप नहीं.

जिसके हृदय में सत्य बसता है,

उस हृदय में स्वयं प्रभु का निवास रहता है.

दिल अगर सच्चा है, तो प्रभु के दरबार में,

कर्मो का हिसाब देना बहुत सहज है;

फिर वहां तेरा पल्ला पकड़ने वाला कोई नहीं.

सत्य का रास्ता तो बिल्कुल सीधा है;

जो सच्चा हो वह इस रास्ते से सीधा चला जाये.

हमें तो दिखाई दिया है, कि

सत्य के मार्ग पर कोई झूठा नहीं चल सकता ।

—:o:—

प्रेम पुरी

अब मिला हमें अपना सुन्दर देश, अपना खास घर !

खेड़ा मेरा ऊंचे पर है.

उसने मेरे मन को हर लिया है.

इस शहर का नाम "प्रेम पुरी" है.

यहां कोई फिक्र हैं न अन्देशा,

यहां न कोई यातना हैं, न धिक्कार,

और न यम की मार पड़ती हैं.

उस पुरी में प्रभु के प्यारे सदा फाग खेलते हैं;

और हमेशा वहां प्रेम के फूलों की वर्षा होती है.

वह अद्भुत लीला कोई बड़भागी ही देख पाता है ।

—:o:—

अगम देश

पक्षी, तू तो उड़ता चल, और उस आकाश मंडल पर चढ़ जा,

जहां न चन्द्र है, न सूर्य, न रात है, न दिन—

उस अगम देश में जो गया, सदा के लिए वहीं रम गया.

वहां सदा ऊंचे ऊंचे ही वह देखता है,

और उस ऊंचाई को कौन माप सकता है ?

वहां न हर्ष है, न शोक—न मृत्यु का ही त्रास है,

और ऐ विहंग, वहां न किसी बहेलिया का ही जाल है,

वहां तुझे सदा दिव्य प्रकाश के अमृतफल चखने को मिलेंगे।

ऐसा है हमारा वह देश—

जो अंतर का भेदी हो, वही उसे जान सकेगा,

न वेद उसका पार पाता है, न कुरान,

कहने और सुनने से परे है वह अगम देश,

न वहां जात-पात है, न वर्ण भेद,

न कुल है न क्रिया,

न संध्योपासना है, न नमाज़ रोज़ा.

—:o:—

जीव हिंसा

रक्त मांस तो सबका एक सा ही है,

यह हमारा नहीं, खुद सृष्ठा का कथन है,

बकरी हो या गाय, या अपनी संतान हो क्यों न हो,

रक्त मांस तो सबका एक ही है.

पीर, पैगम्बर और औलिये सब,

मरने को ही यहां आये हैं.

फिर इस देह को पोषण करने के लिए,

जो खुद मर्त्य है, क्षण जीवी है,

क्यों किसी प्राणी का व्यर्थ वध किया जाय ?

ऐ मुल्ला, कालिख पोत दे इस खूनी छुरी पर,

दिल से निकाल दे ज़िबह करने का काला खयाल,

ये सारी सूरतें अल्लाह की ही तो हैं;

मुल्ला, क्यों गरीब प्राणियों को ज़िबह करता है ?

—:*:—

सब में एक आत्मा !

अरे, तू समझता नहीं ?
पीडा तो सब को एक-सी ही होती है,
पांव में तेरे कोई कांटा चुभा है ?
पीड़ा कभी हुई है तुझे ?
फिर भी तू गरीब प्राणियों की—
गरदन पर छुरी चलाता है.
हाथी में, चींटी में, पशु में, मनुष्य में,
सब में एक ही आत्मा है.
एक ही परमात्मा सब का है.
ज़िबह करके,
तू खुदा के गले पर छुरी फेरता है,
और तिस पर शूरमाओं में,
अपनी गिनती करता है.
क्यों मारते हो किसी गरीब जीव को—
जान जब सब की एक-सी ही है ?

जीभ के दास

भले ही तुम करोड़ों बार वेद पुराण सुनो,

जीव-हत्या के पाप से मुक्त होने के नहीं—

माना कि तूने करोड़ों गौओं का दान किया है,

काशी में मरने का भी संकल्प किया है,

पर तू नरक-वास से बचने वाला नहीं.

ठीक, तूने मछली का मास रत्ती भर ही खाया है,

पर दण्ड तो तुझे पूरा ही भोगना पड़ेगा.

दूसरों का मांस खाकर—

क़यामत के दिन भला कौन अपना गला कटायेगा ?

रक्त मांस तो सब का एक-सा ही है,

जैसा पशु का मांस वैसा मनुष्य का मांस,

किंतु मनुष्य का मांस तो चाव से सियार भी नहीं खाता,

ऐसा निरुपयोगी है नर का मास,

उसके पोषण के लिए शत्रुओं का मांस खाते है,

जीभ के दास ये मूढ़ मानव !

खुदा की ज़िबह

मांस मछली तुम्हारे खेत की उपज हैं क्या ?
तब तुम अवश्य अपना बोया धान्य काट कर खा सकते हो.
तुमने मिट्टी के देवी-देवताओं को बनाया;
और लगे उन्हें सच्चे जीवों की बलि देने,
तुम्हारे देवी देवता सच्चे हैं तो,
वे खेत में चरते पशुओं को खुद पकड़ कर खा जायं,
राम का भजन करो,
जीभ की गुलामी छोड़ो !
उस दिन की खबर है तुम्हें ?
वहां गरदन के बदले गरदन देनी पड़ेगी.

—:०:—

गीताञ्जलि

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

किसान भगवान

यह सब भजन पूजन माला छोड़ दे,
अरे सब द्वार बंद किये, देव मंदिर के अंधेरे कोने में.
तू किस को पूज रहा है ? आखें खोल कर देख,
देवता तेरे सम्मुख नहीं है;
वह तो वहां है जहां किसान कड़ी भूमि भेद कर,
खेती कर रहा है—जहां मजदूर पत्थर फोड़ रहा है.
वह धूप और वर्षा में उनके साथ रहते हैं,
और उनके वस्त्र धूल धूसरित हैं,
अपना शाल दुशाल अलग रख द,
उनके ही समान धूल भरी धरती पर आओ,
मुक्ति ! अरे यह मुक्ति कहां है ?
भगवान ने स्वयं सृष्टि का भार स्वीकार किया है,
वह तो सदा के लिए हम सबसे बंध गया है.
अपना ध्यान छोड़ो, फूल-फल और धूप,
अलग रख दो, यदि तुम्हारे वस्त्र धूल
धूसरित और तार-तार हो जायें तो क्या हुआ ?
उसके साथ एक होकर परिश्रम करते-करते,
पसीने में तर हो जाओ.

—:*:—

(34)

भक्त मिलन !

न मालूम किस काल से तुम मुझसे मिलने—
सदा मेरे समीप आ रहे हो !
तुम्हारे चन्द्र सूर्य तुम्हें मुझसे छिपा कर,
अनंत काल तक अलग नहीं रख सकते.
प्रात: और संध्या की बेला में चरण-चाप सुनाई पडे हैं,
छिप कर तुम्हारा दूत मेरे हृदय में संदेशा कह गया है.
आज मेरे प्राण न मालूम क्यों चंचल हो रहे हैं,
और हृदय में हर्ष का कम्पन हो रहा है;
ऐसा जान पड़ता है कि आज समय आ गया है,
मेरा सब काम समाप्त हो गया है,
और पवन में तुम्हारी मंद मधुर गंध व्याप्त है.

—:x:—

भेंट !

तुम अपने सिंहासन से उतर आये,

मेरी कुटिया के द्वार खटखटाये.

मैं एक कोने में नितान्त एकाकी बैठा गा रहा था,

और संगीत ध्वनि तुम्हारे कर्ण-गत हुई.

तुम आकर मेरी कुटिया के द्वार पर खड़े हो गये,

तुम्हारी सभा में अनेक गुणी है,

वहां सदा ही गान होते रहते है.

परन्तु इस गुण-हीन का गान,

आज तुम्हारा प्रेम संगीत हो बज उठा,

एक करुण क्षीण स्वर विश्व के महान् संगीत में मिल गया.

पारितोषिक रूप में तुम पुष्प लिए उतरे,

और मेरी कुटिया के द्वार पर ठहर गये·

—:*:—

भीख !

मैं ग्राम-मार्ग पर द्वार-द्वार भीख मागने गया था,

जब कि तुम्हारा स्वर्णिम रथ झलमलाते स्वप्न की भांति,

दूर पर दिखायी दिया, और मैं हैरत में पड़ गया,

कि यह राजाधिराज कौन है !

मेरी आशायें ऊपर उठीं और मैंने सोचा कि,

मेरे बुरे दिनों का अंत आ पहुँचा है.

अयाचित भिक्षा की प्रतीक्षा में मैं खड़ा रहा.

जिस स्थान पर मैं खड़ा था वहां आकर रथ रुक गया.

तुम्हारी दृष्टि मुझ पर पड़ी और तुम मेरे पास आये,

मुझे मालूम पड़ा कि अंत में मेरे जीवन का भाग्योदय हो गया,

तब सहसा तुमने अपना हाथ बढ़ा कर कहा—

मुझे देने के लिए तेरे पास क्या है ?

—:: : : ::—

काश !

हाय ! भिखारी के आगे भिक्षा के लिए हाथ पसारने का,
यह कैसा राजसी उपहास है,
मैं अनिश्चित दशा में हत-बुद्धि-सा खड़ा रह गया,
और तब झोली में से अन्न का एक कण धीरे से निकल कर,
तुम्हें दे दिया,
परन्तु मुझे कितना आश्चर्य हुआ ?
जब दिन के अंत में मैंने झोली उलट कर देखा कि,
छोटी-सी ढेरी में एक नन्हा सा सोने का दाना है !
मैं फूट-फूट रोने लगा और कहा—काश,
तुम्हें सब कुछ दे डालने का साहस मुझमें होता !

—:०:—

रात का राजा !

रात अंधियारी हो गयी थी,

हमारे सब काम समाप्त हो चुके थे,

हमने सोचा रात्रि का अंतिम अतिथि आ चुका,

और गांव के सब द्वार बंद हो गये.

किसी ने कहा महाराज आने वाले हैं;

हम हंस पड़े कि यह नहीं हो सकता.

द्वार पर खटखटाहट मालूम पड़ी, और हमने कहा कि,

यह हवा के सिवा और कुछ नहीं.

दीपक बुझा कर हम सोने के लिए चले गये.

किसी ने कहा "यह दूत है";

हमने हंस कर कहा "नहीं, यह पवन है".

आधी रात को कुछ शब्द हुआ,

नींद के झोंके में उसे दूर के बादलों की गरज समझा.

—:o:—

हड़बड़ा उठा !

धरती कंपी, दिवारें हिलीं इससे हमारी नींद खुली.

किसी ने कहा "यह पत्तियों का शब्द है !"

हम ऊंघते हुए बड़बड़ाये;

"नहीं यह मेघों की गरज है."

अभी रात ही थी—जब नगाड़ा बज उठा;

"जागो, देर न करो !" की ध्वनि हुई ।

हमने अपने हाथ कलेजे पर रक्खे और भय से कांप उठे !

किसी ने कहा. "वह राजा की सवारी है." ।

हम खड़े हो गये और बोले,

"अब देर करने का समय नहीं है."

महाराज आ पहुँचे, पर

आरती और माला कहां है ?

धिक्कार है—धिक्कार है ! भवन और सामान कहां है ?

—:o:—

आंगन में आसन

किसी ने कहा—यह रोने और चिल्लाने से क्या लाभ ?

उनका खाली हाथों ही स्वागत करो !

उन्हें अपने सूने घर में ही आसन दो !

द्वार खोल दो और शंख बजाओ !

रात्रि के गांभीर्य में हमारे सूने

और अंधियारे घर का राजा आया है !

आकाश में वज्र-गरज रहे हैं,

अन्धकार बिजली की कौंध से कांप उठता है !

अपने फटे आसन के टुकड़े को लाकर आंगन में बिछा दो !

झंझा के साथ भयानक रात्रि का राजा आया है !

—:o:—

(41)

गंगा दीप !

निर्जन नदी तट पर वानीर वन में मैंने प्रश्न किया—

"सुकुमारी, दीपक को अंचल की ओट किये तुम कहां जा रही हो?

मेरा घर बिलकुल अन्धेरा और सूना है,

अपना दीपक मुझे दे दो !"

उसने अंधकार में अपने सघन नेत्रों से मेरी ओर देखा

बोली, "सूर्यास्त के बाद मैं इस दीपक को,

नदी में प्रवाहित करने जा रही हूं."

वानीरों में अकेले खड़े मैंने उसके दीपक की तरल शिखा को,

धारा में निष्प्रयोजन बहते देखा .

—::::::—

आकाश दीप !

निशावतरण में मैंने उससे पूछा—

"सुकुमारी, तुम्हारे सब दीपक प्रदीप्त हो चुके,

फिर तुम अपना दीप लिए कहां जा रही हो ?

मेरा घर बिल्कुल अंधेरा और सूना है,

अपना दीपक मुझे दे दो."

वह अपने सघन नेत्र मेरी ओर उठा पलभर ससंभ्रम खड़ी रही,

अन्त में उसने उत्तर दिया—

"मैं आकाश-दीप दान करने आयी हूं"

मैं अंधेरे में खड़ा देखता रहा कि,

उसका दीपक शून्य में व्यर्थ ही जल रहा है !

दीपावली !

अर्द्ध रात्रि के ज्योत्सना विहोन दोपावली अंधकार में,

मैं ने उससे प्रश्न किया—"सुकुमारी,

दोपक को हृदय में लगाये तुम किसे खोज रही हो ?

मेरा घर बिलकुल अंधेरा व सूना है—

अपना दीप मुझे दे दो."

वह पल भर ठहर कर सोचने लगी,

फिर अंधेरे में मेरे मुंह की ओर देखा,

उसने कहा—"मैं अपने दीपक को,

दीपावली में लगाने के लिए लायी हूं."

मैंने खड़ा-खड़ा उसके छोटे दीपक को दूर,

अन्य दीपों में व्यर्थ होते देखता रहा.

(44)

मृत्यु द्वार !

मृत्यु जिस दिन तुम्हारा द्वार खटखटायेगी,

तुम उसे क्या भेंट दोगे ?

अरे, मैं अपने अतिथि के सामने—

अपना पूर्ण प्राण-पात्र रख दूंगा,

मैं उसे रिक्त हस्त कभी विदा न करूंगा.

शरद ऋतु के दिन और वसंत की रात्रि का जो रस एकत्रित है—

वह, और उससे अपने जीवन का समस्त धन—

यह सब उसके आगे रख दूंगा,

जिस दिन मृत्यु मेरा द्वार खटखटायेगी.

—:: :: ::—

(45)

प्रिय मिलन !

मृत्यु ! मेरी मृत्यु, मेरे जीवन की चरम परिपूर्णता,
आओ और मुझसे चुपके चुपके आलाप करो;
मैं जीवन भर तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा,
तुम्हारे ही लिए मैंने जीवन के सुख-दुख सहे हैं;
मैंने जो कुछ पाया, जो कुछ मैं हूं,
मेरी जो भी आशा और प्रेम है,
वह सब अनजाने ही तुम्हारी ओर जाते रहे हैं.
तुम्हारे एक दृष्टिपात से ही—
मेरा जीवन सदा के लिए तुम्हारा हो जायेगा.
वरमाला गूंथ रखी है,
विवाह के पश्चात वधू विजन रात्रि में—
पति मिलन के निमित्त अपने घर से विदा होगी.

—o—

(46)

विदाई !

मुझे अवकाश मिल गया,

भाइयो, मुझे विदा दो !

मैं तुम्हें नमस्कार कर चलता हूं.

अपने द्वार की यह कुंजियां लौटाता हूं,

और अपने घर के समस्त अधिकार त्याग रहा हूं,

अंतिम समय मैं तुमसे मीठे बैन ही चाहता हूं,

हम बहुत दिनों तक पड़ोसी रहे,

पर मैं ने जितना दिया उससे अधिक पाया.

अब भोर हो गया है,

मेरे अंधेरे को उजाला करने वाला दीप बुझ गया है,

मेरी पुकार हो चुकी,

और मैं चलने को तैयार हूं.

—::::::—

शुभ कामना

मित्रो, विदाई के अवसर पर मेरे लिए शुभ कामना करो !

आकाश उषा से दीप्त है,

और मेरा मार्ग सुन्दर है.

वहां ले जाने को मेरे पास क्या है ?

यह न पूछो.

मैं रिक्त हस्त और आशान्वित हृदय लिए,

यात्रा पर निकलता हूं.

मैं वरमाला पहनूंगा.

पथिकों के समान मेरे गैरिक वस्त्र नहीं हैं.

मार्ग संकटमय रहने पर भी,

मेरे मन में कोई भय नहीं है.

मेरी यात्रा जब समाप्त होगी,

उस समय गुरु का उदय हो जायगा,

और राजा के नौबत खाने में सांध्य संगीत हो रहा होगा.

—::*::—

यादगार !

जब मैं यहां से चलूं तो—

यह मेरे अंतिम शब्द हों कि—

मैंने जो देखा है, वह अनुपम है.

मैंने इस कमल में छिपे हुए मधु का आस्वादन किया है.

और इस भांति मैं धन्य हूं,

मेरा यह अंतिम उद्गार हो.

अनंत रूपों की इस क्रीड़ा स्थली में,

मैं अपने खेल खेला हूं.

और यहीं उसके दर्शन किये जो रूपहीन है,

उससे मेरा सारा शरीर व अंग रोमांचित हो उठे हैं,

और यदि अब अन्त होना है—

तो भले ही हो—यह मेरे अन्तिम शब्द हों.

—:o:—

[एक रूपक]

डा. मसूद हुसेन

प्रोफ़ेसर अलीगढ मुसलिम यूनिबरसिटी

बंगला देश

किस जादूगर का यह घर है ?
बंगला देश इक रंग भवन,
घने घने बासों के जंगल !
जिनमें हवायें गाती मंगल,
हरे भरे सब खेत और बन,
कृष्ण वरन से भी कुछ गहरी,
जिसकी धरती और गगन !

रूप अनीला, नीला नीला,
नदियों की रुपहली बाहें,
उजली उजली फैली राहें,
डाली डाली में आलिंगन,
सोती लताओं में होती कानाफूसी
फूल बनों में,
यह छिटकी छिटकी-सी फबन !

देश भी नीला, भेस भी नीला
फूलों की खुशबू से बोझल,

मंद, हवा का आंचल,

धान धनुख और सागर जलथल,

पवन के झोंके हांपते फिरते,

वह टूटा-सा चांद का दर्पण;

सारे देश पर इक धानी आंचल-सा फैला,

एक उदासी, एक उदाहट.

एक सपना-सा, इक नशा सा,

खुले खुले सारे बंधन !

सपनों से यह भरी हवायें,

ऊदी ऊदी नीली घटायें.

धानों की हर बाली दूसरी बाली से,

कान में कुछ चुपके से कहती.

खेतों की कोरों से लग कर,

दूर पै वह इक नदी बहती.

धीरे धीरे !

इक सपना-सा बह निकला हो,

राधा की आंखों से जैसे !

इक सोया सा देश,

नींद की माती जिसकी नदियां;

चुप चुप रोतीं, गम को सहतीं· बहती जातीं.

दर्द भरी सी, धीरे धीरे चलती मरी सी,

नैन में दुख को घोले.

दिल में लाखों फफोले,

मिलन की आस लिए चलती हैं हौले हौले !

और कहां वह मेरे देश के चंचल कोहिस्तानी चशमे,

जिनमें जीवन लहर मचलती.

पथरीले आंचल की ओट से जिनकी हंसी नित फूल रही हो

मिलन की चाह नहीं है जिनको.

अपनी ही परवाह है जिनको,

उठते बैठते, गिरते और टकराते चलते.

लड़ते, भिड़ते, अकड़ते, शोर मचाते चलते,

इक कोलाहल, बलखाते, लहराते पलपल.

आह ! वह मेरा चमकीला देश !

ऊंची लहरें. तुंद हवायें,

ऊंचे पर्वत,

कडियल जैसे मेरी जवानी !

यहां की हर डाली लचकीली,

फूल भी कैसे नींद के माते.

चांद भी चुप, तारे भी चुपचाप,

करम से सब अनजान !

प्रेम से सब बेजान !

इस ठिठके आकाश को देखो !

देखो ! तारों की वह आंखें,

अपनी किरणों की पलकों से,

धीरे धीरे, अनथक अनथक.

नित बुनती सपनों की जाल !

है दुख से भरपूर यह देस,

दुख भरी आहें हर झाड़ी में

कमल कुम्लाये, बादल छाये,

नन्ही नन्ही नैनों से बरसते.

प्रेम की पीर से ढीले अंग हैं,

सोयी सोयी मन की तरंग है.

करम का प्रेम से क्या संजोग,

प्रेम तो बंगला देश का राग !

बंगला देश तो प्रेम की भूमि,

राग भूमि, रंग भूमि !

कर्म भूमि से जो आते,

सब खोकर कुछ पाते,

मैं परदेसी कोहिस्तानी,

इक चमकीले देश का वासी,

इस सपनों के धानी देस में,

किसके रूप की चाह है मन में !"

—::::::—

बंगला बाला

मंजुल, वह गांव का जीवन

जिसके रूप अनूप के कारण

बंगला देश है कृष्ण वरण,

वह थी नीले देश की सुन्दरी

उसका जोबन—

काले केश, कलश और काजल

जामुनी होंठ रसीले

नैन हठीले

ढीला अंग—बदन की रंग तरंग

आबी सारी छिटक रही थी—

झटक वह केसर-तन की, होश उड़ादे

आंखें रंग की इक पिचकारी—

जैसे दिन से आंख मिचौली

खेलती अंधियारी—!

बंगला देश की सुन्दर बाला

उसके गले में

कोमल कमलों की इक माला

अंग अंग में चहकार

ओठ भी लाज द्वार

आंखों में इक उलझी बोली—

मुख में भरी हुई झनकार

ढला ढलाया रूप

जैसे चांद की धूप

या जैसे संगीत

कवि का गीत

काले केश, झुकी-झुकी सावन की घटायें

नपी तुली मुसकान, बनी हुई अनजान

पवन भी डोलती फिरती इधर उधर

वह———

सांझ की पलकों में सोती थी—

शबनम से मुंह को धोती थी

लहरों से नित खेल था उसका
चिड़ियों से कुछ मेल था उसका
खुशबू पीती, हंस हंस जीती
लेकर मन में प्रेम की उलझन
पलकों की झालर से कुछ मोती बरसाती
मतवाली नीलम प्यालो से मद छलकाती

इक कली जो—
बादलों के सायों में पलकर,
निखर उठी हो !
राग की आग थी जिसके मन में
धुली धुली निथरी-सी आंखें,
तीखे चितवन—
जिनमें था इक नरम लचाव,
चाहत, चाह, चहल और चाव,
अचपल, चंचल और एक सुभाव,
ठिठक ठिठक अठखेलिया करती !
चाल में नृत्य के भाव,

खेलती थी कानन-कानन में,

फूलों के कुछ सुन्दर खेल,

केवल कलियों से था मेल,

आंख नशीली, बात रसीली,

आंखें, जिनमें लाखों सपने !

सागर, लहरें, भीलें, ऊदी अधरें !

राधाकृष्ण की आंख मिचौली !

धानों के खेतो की थी, महक रही थी,

बांसों के जंगल बाला, चहक रही थी,

प्रेम का अमृत पी पीकर वह पली बढ़ी,

उसके दिल में बंद कली की दाह !

बोल सुरीले—प्रेम अथाह,

परदेसी, कोहिस्तानी को भी सागर की चाह ?

—:×:—

एक शाम !

मंजुल के सिर से इक शाम,
ढलक गया था उसका आंचल,
कजलाया सूरज भी उस दम,
धुवां धुवां सा हवा में बादल,
उतरा-उतरा शाम का चहरा,
उखड़ रही थीं उसकी सांसें,
टपक रहा था व्योम का स्वर्ण पिघल पिघल.

डूबते जी से,
मंजुल के पास आकर पहाड़ी बोला—
"वह देखो ! अल्हड रजनी बाला,
टिके हुए रत्नों से भारी उसका आंचल,
मांग भरी सी,
आंख डरी सी,
सांस दबाये,
चुपचुप मुसकाती, महकाती.

अल्हड रजनी-बाला आती,

प्रेम की लहरी करम की वैर।"

जैसे एक भरन सावन की,

मंजुल हंस कर यों बोली—

"मेरे साथी कोहिस्तानी!

देखो! शाम का लुटता सुहाग,

तुम कहते होगे—न उठेगा,

उसकी चिता से एक भी राग,

और सुनो! जीवन का संगीत है जलना;

लेकिन तुम आपे के पुजारी,

शाम का राग सुन पाओगे ?

आज सुनो!

शाम अवध की मेरा जीवन,

यूंही जलता सा मेरा मन,

शाम की लंबी गहरी सांसें,

मेरे जीवन का सूनापन;

सांझ के पंछी का कुछ गान.

जैसे दिल की मध्यम धड़कन,

सांझ के आंचल में कुछ तारे.

तारों से पुर मेरा दामन,

श्याम अवध की मेरा जीवन,

मिटता जाता पल पल छिन छिन.

तुम परदेसी कोहिस्तानी, पुतले अमल के,

बंगालिन के गहरे जलथल,

मन को क्या समझोगे !

अमल तो प्रेम की है इक मंजिल,

अमल जीवन की वह चोटी.

एक झलक आंखों में भर लो, जिससे प्रेम नगर की,

प्रेम नगर में मिटना हर प्रेमी का हक है,

डूबते सूरज़ की सौगंद !

—::::::—

नाव में !

"नदिया !

बहना धीरे धीरे,

मंजुल जायेगी पार.

एक कंवल से फूल सी किशती,

कितनी तेज है धारा !

लेकिन मैं नाव का मांझी,

मेरा इशारा, रुकेगा धारा.

ऐ ! मंजुल तुम रोती क्यों हो ?

मैं हूं तुम्हारे साथ,

कोहिस्तानी पुतला अमल का—"

"छोड़ो मेरा हाथ !

तुम रोकोगे इस धारे को !

क्या बात !

प्रेम में डूब रहा है यह मन,

लादो मुझ को भंवर के कंगन !

बात की तह तक तुम पहूंचोगे ?

ढूंढते हो हर बात में थाह,

प्रेम नदी है अथाह !

तुम कहते हो—मैं हूं मांझी,

नाव का मांझी तो दरिया है !

कंवल पै ओस क्यों इतराये ?"

"मंजुल ! तुम शबनम हो, लेकिन

मेरी गागर में सागर है !

ओ बंगाल की मंद हवाओ !

तुम में नहीं है जान,

कली में हो मुसकान,

मंजुल के जी में आजाय जीने का अरमान !

"चुप नादान !

सुन ले तू इक गान—

पाने प्रीत का भेद

चल दी नय्या छोड़ किनारा.

निर्मल जल में है इक हलचल,
उठ उठ लहरें देखतीं पल-पल-
सिमटे है साहिल का आंचल

नय्या, तेज है धारा,
छोड़ के पीछे कूल किनारे,
तोड़ के अपने बंधन सारे,
चल दी आशाओं के सहारे,

दूर, जहां है रौशन तारा,
दूर, जहां कुछ रंग घुले हैं,
सागर और आकाश खड़े हैं,
प्रेम में ओठ से ओठ मिले हैं,

लौट, री पगली ! चूम किनारा,
पाया प्रीत का राज़,
मांझी ! घाट को लौट चल अब !"

—:x:—

बासों के जंगल

बासों के बन में है मर मर,
थिरक रहा है पत्ता पत्ता,
मंजुल आज नृत्य पै मायल,
पत्ता पत्ता, बूटा बूटा,
तकता हैं रह उसकी
वह संगीत नृत्य की रानी,
आयी आखिर हिले जुले,
अनगिनत सुरों में बजा महा बन,

मंजुल के पैरों को पवन ने अब थपकी दी,
अंग अंग में फिर लहराया,
पग की गति में ज़ोर सा आया,
फूल बनों में घुमड़ उठीं, इक बार हवाएं
बन के पौधे पौधे ने बल खाया,
पेड़ों का सर चकराया,
कोहिस्तानी चिल्लाया—

"बस, मंजुल बस !
मैं तेरे चरणों में बे-बस,
नृत सारा है एक बड़ा ही सुन्दर पाप !"

"पाप ! कहा क्या !"
मंजुल ने अंजुल में कुछ गंगा जल लेकर,
मारा परदेसी के मुख पर—

"यह है प्रेम का पान, नृत्य सोपान,
परदेसी प्रीतम !
तुम बनवासी कोहिस्तानी,
क्या बन में नृत्य नहीं होता जर्रों का !
तुम संगीत, नृत्य से दूर !
काया का झन्कार नहीं यह,
तन तो मन के साथ थिरक उठता है;
और नृत्य के हर चक्कर पर,
झड जाती है इस तन की थोड़ी सी राख,
नृत्य से तन सोता है, जागता है !

—:×:—

आमों के कुंज में

किरणों से उकतायी,

मंजुल आमों के कुंज में आयी.

कासनी नीले फूल यहा खिलते हैं,

कलियां जी में चाह की गांठ लिए बैठी हैं.

ऊंघती छांव में कुंजों की,

प्रेम बढ़ता है एक लता सा.

सदियों से होता आया है इन में प्रेम व्यापार,

किसी की जीत किसी की हार.

मंजुल हर प्रेमी को इनमें खींच के लाती,

थपक थपक कर उसे सुलाती और गाती,

वह है जितना ज्यादा रोशन,

उतने गहरे मेरे साये,

पास किरन जो आती छिन छिन,

इन सायों को किया चमकीले,

उसका उलटा पट यह जीवन.

रोशन जितना यह हो जाये,

होंगे उतने गहरे साये !

"बस तो ऐ परदेसी प्रीतम,

यह जीवन तो उलटा पट है,

और तुम हो किरनों के रसिया,

इन कुंजों से घबराते हो,

लेकिन खुद जीवन है इक साया,

हलका हलका एक धुंधुल का,

जिस को हर दम घेरे रहता,

सारी उजली राहें जिसमें खो जाती हैं जाकर,

जैसे मांग रे भबालों में,

तुम मेरे साये बन जाओ,

खुद को खोकर मुझ को पाओ."

"मंजुल ! मंजुल !! ठहरो ! क्यों मिटती जाती हो !"
चला परदेसी उसको देखके सायों में फिर मिटते,
इक मिटती सी आवाज यह आयी —
पुतले अमल के !

मैं कैसे आंख उठाऊं ?

गिर जायेंगे मोती सारे,

कितने चंदा कितने तारे,

जिनको पलकों में उलझाऊं,

मैं कैसे आंख उठाऊं !

ग़म जब खेलता है नस नस से,

भर आती है दुख के रस से,

यह नीलम प्याली छलकाऊं,

मैं कैसे आंख उठाऊं ?

पिया नदी तेरी शरमाये,

मेरी आंख अगर भर आये,

इस में सब संसार डुबाऊं,

मैं कैसे आंख उठाऊं !

कर दो अपने बंधन ढीले,

मंजुल को सायों में ढूंढो,

श्रोर उसके साये बन जाश्रो,
खुद को खोकर उसको पाश्रो.

आज किया मैंने कुछ ऐसा,
खुद को खोया उसको पाया,
मिल जाऊंगा उससे, या फिर,
बन जाऊंगा उसका साया !

जिस जिस रुख़ वह रुख़ को फेरे,
हर हर पल में उसको घेरे,
साथ रहूंगा, साथ फिरूंगा,
रोशन जितना हो जायगा,
हो जाऊंगा उतना गहरा !

जितना मुझ से घबरायेगा,
लिपटे जाऊंगा कदमों से,
इक पल फिर ऐसा आयेगा.
इक रोशन पल—जब वह मुझ को,
अपने सीने में भर लेगा !

—:o:—
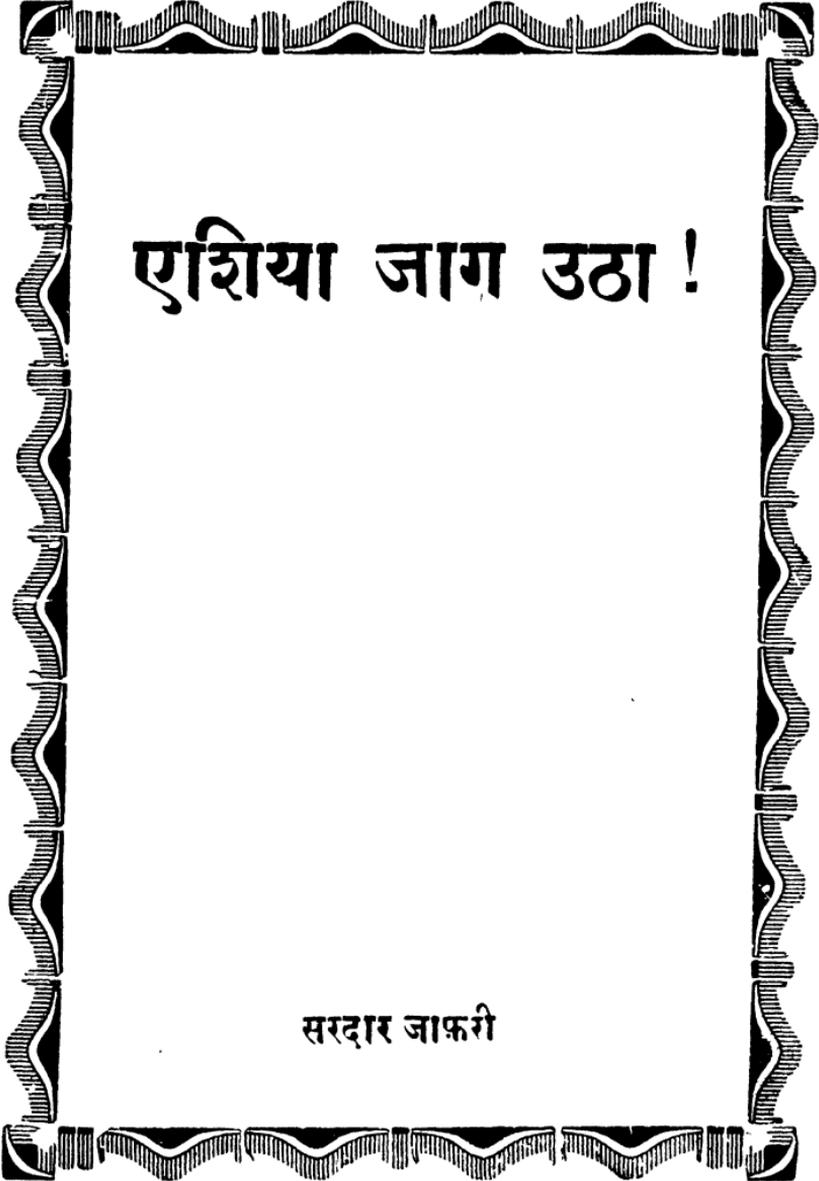
एशिया जाग उठा !

सरदार जाफ़री

एशिया जाग उठा !

एशिया की जंग आजादी है इक दुनिया की जंग,

है हमारे जख्म—दिल में सारी दुनिया की उमंग,

हां बदल जाने को है अब पश्चिम और पूरब का रंग !

आज सब मिलकर पुकारो, मिलके सब नारे लगाओ,

"एशिया से भाग जाओ"

सह्याद्री के पहाड़ अंगड़ाई लेके जागे,

जमीन का नक्कारा तेज घोड़ों की तेज टापों से बज रहा है !

पहाड़ की चोटियों ने तोपों का रूप धारा,

चट्टानें किलों की आकार लेकर उभर रही हैं,

किसान बाढ़ बन कर बढ़ रहे हैं.

पलट गयीं वक्त की हवायें,

उलट गयीं सल्तनत की चालें,

किसान, बाढ़, भूचाल, तूफ़ान, शोर गुल,

बगावत, इनक्लाब, नारे !

यह सब वीरों के मोर्चे हैं,

यह सर हमेशा कटा किये हैं,

यह दिल हमेशा लुटा किये हैं,

यह हाथ गलते रहे हैं लोहे की हथकड़ियों में,

यह पैर सिकुड़ते रहे हैं जेलों की बेड़ियों में !

ज़मीन अमर है,

हवा अमर है,

अमर है पानी,

अमर अवामी दिलों की धड़कन,

अवाम मरते नहीं हैं, सो जाते हैं,

ज़मीन की सुनहरी मिट्टी में मुंह छिपाकर,

वह अपने मां की सुनहरी छाती से लगा कर

बहार के स्वप्न देखते हैं !

ज़मीन से कोंपलें निकलती हैं और आकाश से सितारे,

हवा से बादल, गरज से बिजली,

अवाम की राख से बग़ावत की आग,

और उस आग से जिंदगानी !

गये युगों के व्योम से क्यों देखते हो हमको,

हम आखरी जंग लड़ रहे हैं.

तुम्हारे हाथों में आरम्भ था,

हमारे हाथों में अंत है.

तुम्हारे हाथों में सिरफ़ तलवार थी,

हमारे हाथों में वक्त व तारीख़ की बागडोर है.

हमें दो अपने मज़बूत कंधों का ज़ोर

अपनी आंखों का नूर दे दो.

बुलंद माथे की रोशनी ले के आओ—आओ !!

कि हम को मालूम है, तुम अब तक मरे नहीं हो.

कि तुम कभी भी नहीं मरोगे.

किसान फौजों को अपनी अलमूत को पहाड़ों

से लेकर उतरो,

हमारे लशकर में आओ, तुम अपना पोली नदी के तहोंसे

हमारे लशकर में आओ कोहाट और खैबर की घाटियों से.

सह्याद्री की चट्टाने एक बार फिर तरानो से गूंज उठें,

और एशिया की पठारें कसमसा के जागें.

कि साम्राजी के दिलों के पत्थर लड़खड़ा उटें,

उनकी राजधानी के सारे,

महल हिल पड़े,

यह एशिया की ज़मीन, सभ्यता की कोख, संस्कृति का वतन है.

बढ़ायें अपनी दुकानें, पच्छिम के सारे सौदागरों से कह दो.

हमारे बाज़ार में लहू का जहरीला व्यापार बंद कर दें.

कि उनकी तोपों के और मशीनों के वास्ते अब,

यहां से ईंधन नहीं मिलेगा.

वह दिन गये जब,

यहां तुम आये थे अपनी हस्ती को कोढ़ लेकर.

जबान पर बाइबिल थी, हाथों में राइफल थी;

होठों पे हंसी नजरों में जहर दिल में हवस.

तुम्हारी रफ्तार जिस प्रकार तोप के धमाके,

तुम्हारी हर सांस जैसे बारूद उड़ रही हो.

हमारी आंखों ने फिर यह देखा,

कि बादलों से हमारे आंसू बरस रहे थे.

आसमान से अकाल, खेत से भूख उग रही थी.

ज़बान गूंगी थी, उंगलियां मुन्न थीं, सास बेदम और आंख बेनम.

सितार के तार हिचकिचों में उलझ गये थे.

वह दिन गये अब मगर,

मगर अब भी तुम्हारे जुए में जुते हुए हैं,

कुछ अंधी आंखों के बैल अब भी तुम्हारा कोल्हू चला रहे हैं,

तुम्हारी जंगी मशीन में कुछ,

घिसे हुए टूटे हुए पुरजे लगे हुए हैं.

मगर यह ग़द्दार कब तलक काम आ सकेंगे ?

कि एशिया अपनी नींद से बेदार हो चुका है,

हमारी आंखों में आग तेवरियों में बिजलियां हैं.

हमारे सीने में दरद है ओठों में गीत हैं.

मगर यहां हम,

किसान, मज़दूर, मोची, धोबी,

कुम्हार, लोहार, अपने शरीर पर खाल पहने हुए खड़े हैं.

हमारी आंखें जले हुए ख्वाब—और चहरे,

उड़े हुए रंग हैं—दिलों में सुनहरी आशाओं की चितायें हैं.

जमीन—सदियों पुराना चहरा,

गरीब—पेट से पीठ तक हड्डियां गिन लो,

किसान—बिन मांस हाड के हाथों में अपने लकड़ी के
हल संभाले,

मजदूर—जलती आंखें बिन रोटी झुलसते पेट, तपते पीठ,

उचाट नींदों की कडुआ रात,

थके हुए हाथ, भाप का ज़ोर गरम फोलाद का,

जहाज़, मल्लाह, गीत, तूफ़ान,

कुम्हार, लोहार, चाक, बरतन,

ग्वालिन दूध में नहाई,

अलाव के गिर्द सूखे बूढ़े कहानी सुनाते.

जवान मावों की गोद में नन्हे मुन्ने बच्चों के भोले भाले चहरे,

लहकते मैदान, गायें भैंसें,

हवाओं में बांसुरी की लहर;

हरी भरी खेतों में शीशे की चूड़ियां खनखना रही हैं,

खजूर के पेड़ बाल खाले,

सितार के तार से बरसते हुए सितारे,

अनार के फूल, आम का बौर, सेव व बादाम के शगूफे के

कोठार, खलिहान, खाद के ढेर, पगडंडियां का पेचताव,

बांसों के झुंड,

घनेरे जंगल,

पहाड़, मैदान, रेगिस्तान के गरम सीने,

गुफायें जन्नत की तरह ठंडी,

समंदरों में कंवल के फूलों की तरह रखे हुए टापू,

चमकते मुंगों की मुस्कराहट,

वह सीपियों की हंसी, वह संथाल लड़कियों के चमकते

दांतों की सी मोती.

वह मछलियों से भरी किश्तियां, जो पिघली

सफेद चांदी में तैरती हैं,

वह लम्बी लम्बी सुन्दर नदियां,

जो अपनी लहरों से तट के कांपते ओटों को चूमती हैं,

दुलहन बना वादियों की नाजुक कमर में झरनों की जगमगाहट,

पहाड़ियों की हथेलियों पर धरे हुए नीले कटोरे.

सितारे मुंह देखते हैं झीलों के आइने में,

हिमालय के गले में गंगा और जमुना की लचीली बाहें,
पहाड़ की आंधियों के माथे पर बरफ़ के नीलगूं दुपट्टे,
हवा के पैरों में जैसे घुंघुरू बंधे हुए हों.
कहीं हवा में बरफ के फूल उड़ रहे हैं,
कहीं ज्वालामुखी के शोले,
जो अपने बालों को पिघले लावे की कंघियों से संवारते हैं.
हवावों की अंगुलियां सेंदूर में मांग काढ़ती हैं,
जमीन सोना उगल रही है,
फ़िज़ायें चांदी लुटा रही हैं,
हवावों में हुस्न बरस रहा है.
समंदर अपनी तड़पती मोजों के जाल में मोतियां लिए हैं,
हीरे, पुखराज के खजाने में,
हर एक पत्थर की रगों में दौड़ा हुआ है लोहा,
हर एक परत कोयले से पुर है,
कि जिन में पिघले हुये सितारे भरे हुये हैं,
हर एक नदी अपने जल की किश्ती में बह रही है.
मगर हमारे वतन की दौलत,

नदी के पानी की तरह,

किसी भयानक सियाह समंदर में जा रहा है !

उदास है एशिया का चहरा,

बदन है नंगा,

सड़क पे बच्चों की नन्हीं नन्हीं,

हथेलियां ठीकरों की भांति पड़ी हुई हैं !

हजारों बेकार बाजू कन्धों पे झूलते हैं !

यह कैसी ज़ालिम उंगलिया हैं,

जिन्हों ने लोहे के पने नाखून पहलुओं में गड़ा दिये हैं !

यह उंगलिया जो हमारे शरीरों से खाल भी खींच ले रही हैं.

यह लम्बी लम्बी सुफेद नलिया,

सुफ़ेद जोंके,

ज़मीन पर पाइपों की तरह बिछी हुई हैं,

समंदरों में पड़ी हुई हैं !

हवा में तांम्बे के तार बनकर खींची हुई हैं !

हज़ारों मीलों के फ़ासले से,

हमारे शरीरों से लोहू, धरती से तेल को चूसे ले रहीं हैं ,

कहो कि हम नफ़ा-खोरों के लिए रगों का लोहू न देंगे,

कहो कि हम ज़हर घोलने के लिए दिलों के प्याले न देंगे.

कहो कि लड़ाई के राक्षस को हम अपने बच्चों के सिर न देंगे,

कहो कि अंगारों की नागिनों को हम अपने आबाद घर न देंगे,

कहो कि एशिया की बस्ती है कोई रास्ता नहीं है,

उड़ेंगे जिसमें तुम्हारे बमबार, अब यह ऐसी हवा नहीं है,

भंवर के चक्कर तुम्हारे परों मे जंजीरें डाल देंगे,

हवावों के हाथ तुमको नीले आकाशों से उछाल गिरा देंगे,

हम आज जाग चुके हैं, तुम्हें अभी तक खबर नहीं हैं.

यह बम के गोले उगे हुए हैं हमारे कन्धों पर सिर नहीं है.

डरो हमारे दहकती आंखों से आग को जिनमें नदियां हैं,

डरो हमारे तपड़ते बाहों से जिनकी हरकत मे बिजलियां हैं,

डरो कि हम एक नई दुनिया इस जमीन पै तय्यार कर रहे हैं

डरो कि हम खून दिल से अपने ख्वाबों में रंग भर रहे हैं,

उठो उठो एशिया के बेटो,

पहाड़ की चोटियों से उतरो.

जमीन की गहराइयों से निकलो,

झपट पडो वादियों से तूफ़ान का जोर बन कर,

उबल पड़ो नदियों से बाढ़ की तरह, किश्तीयों से उतरो,

सुनो, सुनो मेरे भाई, हां तुम,

मैं पूछता हूं तुम्हारी टोपी पै मैल क्यों है ?

तुम्हारा कोट और तुम्हारी धोती फटी क्यों है ?

अरे, यह तुम हो ?

बताओ तुम अब तलक कहा थे ?

मैं तुम को एक एक तट, एक एक पोर्ट पर ढूंढता फिरा,

मैं तुम से शंघाई में मिला था,

खबर नहीं कितने साल गुज़रे,

अदन के साहेल पै तुम खड़े थे,

बंदर-मुंह कप्तान तुम को अकसर,

ख़लासी कह कर पुकारता था,

फिर एक दिन तुम न जाने किस बात पर एकाएक,

गरज उठे थे,

तुम एशिया के लम्बे चोड़ेसमुद्र-तट के अभिमान हो,

समंदरों पर निगाह रखना,

कि दुश्मनों के जहाज़ और डाकुवों के बेड़े.

हमारे किनारे के आस पास अब भी तैरते रहते हैं,

मेरी बहन ? हां मैं तुम को पहचानता हूं, आओ,

पास आओ,

तुम्हारे माथे का खून अब तक थमा नहीं है ?

तुम्हारे सीने पै अब भी संगीन का निशान है,

मगर वह सीसे की गरम गोली,

तुम्हारे पहलू को चीर कर जो निकल गयी थी,

उसे मैं एक एक आदमी को दिखा रहा हूं !

यह देखो, मैं उसको हाथ में लेके पूछता हूं ,

यह गोली किस मुल्क में बनी है ?

कहां से आयी है ?

कौन लाया?

क्या यही है मदद जो अपने गोरे दोस्त हमें दे रहे हैं ?

उठो, मेरी अम्मा तुम्हारी बेटी मरी नहीं है,

वह घायल हाथों में सब से आगे,

जलूस में झण्डा थामे बढ़ रही है ?

उठो मेरी अम्मां !
तुम अपने सिर के सुफेद बालों की चादनी से,
अंधेरी रातों में नूर भर दो,
देश के सीने को जगमगा दो,
तुम्हारे हाथों की झुर्रियां मुस्करा रही हैं,
मेरी मां अपना मरियमी हाथ अपने बेटियों के सिर पे रख दो,
हम आखरी जंग लड़ने मैदान में जा रहे हैं,
तुम्हारी आंखों में आंसू है और चेहरा मुस्करा रहा है !
वह हाथ जो बिजलियों की गरदन पकड़ रहे है,
वह हाथ जो अपनी उंगलियो से जमीन की तकदीर लिख रहे है,
हम एक हैं, एक हो गये हैं,
न कोई पूरब है, न कोई पच्छिम,
सियाह, पीले, सुफेद, भूरे,
हम एक बहार के फूल, एक सूरज की किरनें हैं,
अलग अलग हैं फिर भी एक ही देश के रहने वाले,
हम एक ही धरती के बसने वाले हैं एक मानवता के कायल हैं,
जमीन सूरज का आइना ले के नाचती है,
मानव जाति की जीत की गीत गा रही है ।

—:o:—